शोध संचयन
A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research
ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net
Vol. 11
Issue 1&2
15 July 2020

कोरोना काल में जड़ता के विरुद्ध सामर्थ्य और आत्मविश्वास की कविता 'प्रार्थना'

बीज शब्द :

कोरोना काल, जड़ता, ईश्वरीय आस्था, सामर्थ्य, आत्मविश्वास, संघर्ष

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना समसामयिक जीवन-शैली में वास्तविकता के आकांक्षी कवि हैं। उनके कविता-संग्रह 'प्रार्थना' का मूल ध्येय जन-मानस में परंपरागत जड़ता के विरुद्ध सामर्थ्य और आत्मविश्वास का संचार करना है। किसी के सम्मुख नत न होकर संकल्पित इच्छाशक्ति के साथ जीवन संघर्ष को अंगीकार करने की क्षमता 'प्रार्थना' कविता का प्राण-तत्व है। कोरोना काल में क्वॉरन्टीन् होती व्यवस्था में यह कविता आधुनिक समाज में पारंपरिक निष्क्रियता के स्थान पर विज्ञानसम्मत, संघर्षवान तथा आत्मनिर्भर होने के लिए उद्वेलित करती है।

*****

नेहा साव
पी-एच.डी. (हिंदी विभाग)
काजी नजरुल विश्वविद्यालय
आसनसोल, (पश्चिम बंगाल)

कोरोना काल में जड़ता के विरुद्ध सामर्थ्य और आत्मविश्वास की कविता 'प्रार्थना'

सृजनात्मकता वह धर्म है जो अपने समाज और समय के बंधन से अतिक्रमण का सामर्थ्य रखते हुए हर युग के साथगतिमान और प्रासंगिक बने रहने का माद्दा रखती है। इस दृष्टि से नई कविता आंदोलन के दौर में अपने रचनाकर्म और उन्मुक्त विचारों के धार से समाज को माँजने वाले सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का नाम अविस्मरणीय है। नई कविता में नया क्या है? इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने के लिए सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताओं की ओर मुखातिब होना होगा। इनकी कविताओं में मौजूद जीवन की सत्यता और उसके प्रति गहरी निष्ठा की स्वीकृति सबसे नवीन तथ्य है, जो जीवन को यथार्थ एवं विश्वास की निगाह से देखने की प्रेरणा देती है। हिंदी साहित्य के छठे दशक में कृतिमान हासिल करने वाले सर्वेश्वर जी आस्था और अंधविश्वास के अति सूक्ष्म पारदर्शी झिल्ली को भंग कर सामर्थ्य तथा आत्मविश्वास के कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। वस्तुनिष्ठ समाज में राजनैतिक पाखंड, आस्थावादी मनोवृति, धार्मिक लगाव और व्यक्तित्व की अस्थिरता से जूझने वाले सामान्यजन-जीवन की पीड़ा का उत्कृष्ट रूप इनकी कविताओं में प्रतिबिंबित है। अपने कृतियों के दम पर सर्वकालिक जीवन जीने वाले सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की चर्चित कविता-संग्रह 'प्रार्थना' का सौंदर्यबोध इस कारण प्रशंसनीय है कि उसमें जीवन के प्रति दृढ़ता और आस्था एक अदम्य साहस के साथ मुखरित हुई है।

कोरोना महामारी के इस नाजुक समय में मनुष्य शक्ति-सृजन-सामर्थ्य एवं आस्था-अंधविश्वास-अकर्मण्यता के पदचाप से गुजर रहा है। विरोधभास के इस अनिश्चित दौर में 'प्रार्थना' कविता-संग्रह व्यक्ति तथा समाज में आत्मक्षमता, प्रज्ञा, साहस, समर्थता एवं सकारात्मकता को जिलाए रखने की पक्षधर है। वर्तमान दौर में मानव और समाज के अंतस जगत में सृजनशीलता का ह्रास हो रहा है और इस सृजन धर्म को संरक्षित करने के क्रम में साहित्य में बहुत कुछ लिखा-पढ़ा जा चुका है, लेकिन 'प्रार्थना-1', 'प्रार्थना-2', 'प्रार्थना-3' और 'प्रार्थना-4'कविता में उपस्थित परम्परा का विरोध और ईश्वरीय कल्पना से मुक्ति की उत्कंठा रचनाकार के भौतिक एवं आधुनिकतावादी दृष्टिकोण को व्यक्त करता है। मंजु त्रिपाठी का मंतव्य है कि। "सर्वेश्वर जी आधुनिक मनोजगत का विश्लेषण कर के उसे अपनी कविता में उतारने वाले कवि हैं, जिसके लिए अपेक्षित दृष्टिकोण का खुलापन भी उनमें पर्याप्त मात्रा में है। किसी भी पुराने तथ्य को एक नयी मौलिकता के साथ प्रस्तुत कर देना उनकी प्रमुख विशेषता है।"[1] दरअसल, यह कविता परम्परागत ईश्वरीय मिथकों को तोड़ने की एक वैसी ही काव्यात्मक कोशिश है, जैसी कोशिश नीत्से ने 'ईश्वर मर गया है' और कार्ल मार्क्स ने 'धर्म अफीम की तरह है' जैसी दार्शनिक घोषणाओं के साथ की थी। इस कविता में कवि ने न केवल मानवीय शक्ति और सामर्थ्य की महत्ता का निरूपण किया है, बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से ईश्वर के अस्तित्व को चुनौती देते हुए बनी-बनाई परिपाटी को तोड़ने का साहस भी दिखाया है। तमाम तकनीकी विकास के बावजूद मनुष्य वैज्ञानिक सोच से अपने आप को जोड़े रख पाने में असक्षम हो रहा है, ऐसे समय में 'प्रार्थना'कविता का औचित्य बढ़ जाता है। डॉ. विजय शर्मा का मानना है।"[1] दर्द के साथ सर्वेश्वर में करुणा का भाव भी बड़ा गहरा है, इसी से कवि पीड़ा को कम करता है । 'प्रार्थना-1', 'प्रार्थना-2', 'प्रार्थना -3' और 'प्रार्थना -4' आदि कविताएँ इसका उदाहरण हैं। प्रार्थना एक कविता में कवि प्रभु से शक्ति नहीं माँगता वरन् जो है उसी में संतोष करता है।"[2] असल में, सर्वेश्वर जी ईश्वरीय सत्ता की असीमता को नकारते हैं, उनकी कविता संतोष नहीं बल्कि विद्रोह की परिभाषा गढ़ती हुई दिखाई पड़ती है।

"मेरे शौर्य और साहस को
करुणामय हों तो सराहिए,
चरणों पर गिरने से मिलता है
जो सुख, वह नहीं चाहिए।"[3] (प्रार्थना 4)

'प्रार्थना' कविता वास्तव में ईश्वर के विरुद्ध एक ऐसी चोट है, जो रूढ़ परम्पराओं को जमींदोज करती है। लीक को छोड़कर अपनी नयी राह गढ़ने की कवायद करती यह कविता एक ऐसी मिशाल है, जिसके आगे तमाम परम्परागत तुकबंध बेजां से प्रतीत होते हैं। बात सिर्फ ईश्वरीय मुखौटे को चुनौती देने की नहीं है, बल्कि सामंती आदर्शों के खिलाफत की भी है। केवल 'प्रार्थना' ही नहीं सक्सेना जी की अन्य महत्वपूर्ण कविताएँ यथा- 'भेड़िया', 'धीरे-धीरे', 'लीक पर वे चले' और 'काठ की घंटियाँ' का स्वर भी परंपरा-विरोधी है। वर्तमान मानसिकता की

अचेतनता ही जड़बद्ध रिवाजों को काँधे पर लादे रखने के लिए उत्तरदायी है। वे जब काठ की घंटियों को बजने के लिए प्रेरित करते हैं, तब वे मानसिक चेतना की जागृति का जोश फूँकते हैं। सदियों से बनी-बनाई रीतियों को सहते-सहते लोग काठ की तरह हो गये हैं, जिनमें न तो कोई स्वर बचा है और न ही चीत्कार, केवल यथास्थिति में बने रहने की गुंजाइश के मध्य कवि ने उठकर-डटकर आवाज बुलंद करने का मन्त्र दिया है। यह सत्य है कि जड़ताओं के विरुद्ध स्वर बुलंद हमेशा हुए लेकिन उनकी गति इतनी मंद रही कि वे किसी भी विस्तृत सामाजिक विस्फोट का कारण नहीं बन सकें। अत: कवि ने आन्दोलन की रफ्तार को तीव्रता देने का हुँकार भरा है। इसी तरह 'भेड़िया' कविता के द्वारा भी एक के बाद एक परम्परा के बनने और समय के साथ उसके जड़ होने का आख्यान है, जिसे तोड़ना ही कवि का उद्देश्य है।

वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के सर्वोच्च शिखर को चूमने को बेताब मनुष्य वैज्ञानिक सोच की जमीन से धीरे-धीरे कटता जा रहा है। उसके हाथ भले ही अंतरिक्ष की ऊँचाइयों को छूकर अपनी सफलता के परचम को लहराने में कामयाब हो गए हों, लेकिन पैरों तले की वैज्ञानिक धरातल खिसकती जा रही है। जिस आदर्श और सोच के साथ विविध भौगोलिक खोज एवं वैज्ञानिक शोध की रूपरेखा तैयार की गई थी, वह समय के साथ धूमिल हो रही है और केवल इसका वाह्य उद्देश्य अर्थात् भौतिक उन्नति ही विज्ञान का आधार रह गया है। ऐसे में प्रार्थना 'कविता-संग्रह की स्मृति हो आना सहज ही संभव है। ईश्वर रूपी प्रतिमान से कुछ भी और न माँगने की जिद तथा संघर्ष रूपी सागर को अकेले केदम पार कर, किनारे तक पहुँचने की उत्कंठा कवि की विद्रोही चेतना का परिचायक है। संस्कृति के आरम्भ से लेकर वर्तमान तक आम जन-मानस की समस्त इन्द्रियाँ ईश्वर रूपी छवि को हमेशा अपने मन-मस्तिष्क में महत्वपूर्ण स्थान देती रही है। कोरोना के इस असंतुलित दौर में जन-सामान्य ईश्वरीय अराधना के नाम पर कर्तव्य विमुख बने हुए है। कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि ईश्वरीय आधार के बिना जीवन की एक भी गति असंभव है। यह सच है कि ईश्वर का भ्रम मन को शक्ति और संबल प्रदान करता है, लेकिन मात्र इसी वजह से सत्य से मुँह फेरना कहाँ तक न्यायोचित कहा जा सकता है? इस सन्दर्भ में 'प्रार्थना' कविता-संग्रह सत्य को स्वीकार कर ईश्वरीय सत्ता को चुनौती देती है। इस संग्रह में कवि की मानसिकता मानवीय बुनियाद के धरातल पर समर्थता बोध की इमारत को खड़ा करना है, जिससे नए समाज की परिकल्पना संभव हो सके, जहाँ हर चुनौती के लिए मनुष्य आत्मबल एवं धैर्य का दामन थामे इतना समर्थ हो कि जीवन की तमाम बाधाओं को स्वयं लांघ सके। ऐसे में ईश्वर की काल्पनिकसत्ता के मोह में क्यों पड़ा जाए? डॉ. कपिल देव पाण्डेय का कथन है। "कवि सर्वेश्वर की विश्व-दृष्टि का तकाजा यह है कि सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक-सांस्कृतिक सभी द्वंद्वों और संघर्षों को समाहित कर। चाहे इसके लिए क्रांति ही क्यों न करनी पड़े। नए समाज का निर्माण करें, नए मनुष्य को प्रतिष्ठित करें और नए वैज्ञानिक-दृष्टि को विकसित करें; जिसकी इयत्ता में लोकोत्तर या धार्मिक भ्रम से अलग सहज-सरल, श्रमशील और ईमानदार मानवता की उच्च कोटि का विकास हो।"[4] कर्तव्यविमुखता के साथ सफलता के श्रृंग पर पहुँचने की लालसा भी ईश्वरीय कल्पना को जन्म देने में सहायक रही है। सक्सेना जी ने 'प्रार्थना' के माध्यम से इस मिथ को तोड़ने का प्रयास किया है कि जीवन सिर्फ सत्यम, शिवम् और सुन्दरम का योग है। उनका दृढ़विश्वास है कि जीवन और संसार में जो कुछ भी बुरा और असुंदर है वह भी जीवन का उतना ही महत्वपूर्ण अंग है, जितना कि अच्छा और सुन्दर। सबकी अपनी-अपनी बिसात और अपना-अपना वजूद है। अपनी निजी विशिष्टताओं को त्यागकर किसी अन्य के विशेषणों से स्वयं को अलंकृत करना हास्यास्पद ही माना जाएगा। प्रकृति कभी भी अपनी विशिष्टता से समझौता नहीं करती और अपनी कमियों-खामियों में अपनी पूर्णता का अनुभव करती है। कविता की पंक्तियाँ है।

"कब माँगी गंध तुमसे गंधहीन फूल ने
कब माँगी कोमलता तीखे खिंचे शूल ने"[5] (प्रार्थना १)

प्रकृति की निगाह में यदि गंधहीनता और तीखापन उसका अभिन्न अंग हैं तो मानव सन्दर्भ में उसकी पेकुलिअरिटी को हेय दृष्टि से देखने के पीछे कौन-सा तर्क है? अत: कहा जा सकता है कि सबको उसकी पूर्णता में सहज रूप से स्वीकार करना ही जीवन की पूर्णता है, इसलिए काल्पनिक ईश्वरीय प्रतिरूप से किसी और तत्व की याचना अप्राकृतिक है? जीवन संघर्षों के अनगिनत प्रहारों से मनुष्य अपने सकारात्मक इरादे, लगन तथा कर्म के प्रति विश्वास से विजय प्राप्त कर सकता है किन्तु अपने आतंरिक शक्ति और साहस को बिसार कर ईश्वर के प्रति नत होने में मनुष्य आज संघर्षों से मुक्ति का आभास करता

है। यदि मानव अपनी शक्ति और सामर्थ्य को ज्ञान के आलोक में परखना शुरू करे तो निश्चित ही मनुष्य-जाति द्वारा बनाए गए ध र्म, रीति, नीति, जाति और ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लग जाएगा। बौद्धिकता के दम पर प्रकृति के रहस्य को जानने वाला मनुष्य अपनी दुर्बलताओं से निजात पा सकता है किन्तु 'ईश्वरीय काल्पनिक भय' के कारण वह ईश्वर रूपी अव्यक्त सत्ता के प्रति नतमस्तक हो रहा है। इसी मोहांधता के प्रति कटाक्ष करते हुए सर्वेश्वर दयालसक्सेना जी शक्तिपूर्वक घोषणा करते हैं।

"तुमने जो दिया, दिया,
अब जो है, मेरा है।"[6] (प्रार्थना û)

सर्वेश्वर जी की कविताओं में एक अदम्य ऊर्जा और उत्साह है। वे किसी भी नकारात्मक तथ्य के मध्य सकारात्मक सोच को जीवंत करते हैं। कह सकते हैं कि जिसकी सोच में सकारात्मकता विद्यमान है, वह न तो किसी से डरेगा और न ही किसी के आगे झुकेगा। भारतीय संस्कृति ने ईश्वर के नाम पर एक ऐसे अकर्मण्य मानसिकता को जन्म दिया है, जो धर्म और संस्कृति के नाम पर याचक बने रहने में ही संतुष्ट होता है। डॉ. कपिल देव पाण्डेय की उक्ति है।" यहाँ ईश्वरीय आस्था नहीं है, बल्कि मात्र ईश्वराश्रित कर्महीनता है, जो मध्यकालीन ईश्वरीय मूल्य के विरुद्ध आधुनिक मानवीय मूल्य की स्थापना करता है।"[7] अन्य शब्दों में कहे तो हमने अपनी अकर्मण्यता और कायरता को धर्म, सहिष्ण ुता और विनम्रता का लबादा ओढ़ा रखा है। इसी लबादे के कारण आजमानव कोरोना महामारी मे अंध-बधिर बना बैठा है जिसके आड़ में समाज के ढोंगी अधर्म और असहिष्णु कृत्यों को करने से बाज नहीं आ रहे हैं। ऐसे प्रतिकूल परिस्थितियों में 'प्रार्थना' कविता इन तमाम जड़ताओं से चुनौती लेता हुआ वास्तविकता से साक्षात्कार करता है एवं जीवन में विद्यमान खीझ, निराशा, आक्रोश, घुटन आदि तमाम मन:स्थितियों को स्वीकार करता हुआ मृत्यु का वरण करना श्रेयस्कर मानता है।

"अपने साहस को भी मैं कंधों पर लादे
चलता जाऊँ जब तक तू यह तन पिघला दे
अमर सृजन तेरे हों
मृत्यु वरण मेरे हों"[8] (प्रार्थना २)

यह काव्य-कृति थोथे आदर्शों और कोरी कल्पनाओं को मूल्यहीन सिद्ध करती है। वर्तमान परिदृश्य में अगर कविता का मूल्यांकन किया जाए तो कवि की दूरदर्शिता स्पष्ट हो जाती है। देश के भविष्य के रूप में बच्चों और युवाओं की बात की जाती है। शिक्षा ज्ञान का आधार है और ज्ञान मन में समर्थताबोध लाती है। लेकिन दिन के शुरुआत में ही बच्चों को हाथ जोड़कर किसी काल्पनिक अदृश्य शक्ति के समक्ष नतमस्तक कर दिया जाता है, जहाँ वे तथाकथित दयानिधि की कृपा पर ही ज्ञान के लिए आश्रित हो जाते हैं। यह परम्परावादी विचार क्या स्वयं के प्रति अविश्वास पैदा नहीं करता, क्या यह 'प्रार्थना' भविष्य मां माँगने की प्रवृति का प्रसार नहीं करती और क्या यह याचना कर्मविमुखता का चिह्न नहीं है? ये तमाम प्रश्न इस कोरोना काल मंश प्रासंगिक बने हुए हैं। यह सच है कि जिन पेड़ों में फल लगते हैं उन्हीं पेड़ों की शाखाएँ झुकती हैं, लेकिन आज हम किस तरह के बच्चों और युवाओं की पौध को रोप रहे हैं, जिनमें फल लगने के साथ ही उनकी शाखाएँ ही नहीं, तने और जड़ भी धराशायी हो रहे हैं। स्कूलों, कॉलेजों में हम बच्चों को कैसी शिक्षा दे रहे हैं? कक्षा आरम्भ होने के पहले ही उन्हें प्रार्थना गीतों के माध्यम से याचक की भाँति भाग्यवादी होने की सीख दी जा रही है। इन जीर्ण होते मूल्यों को पुनर्परिभाषित करने की आवश्यकता है। इसलिए सर्वेश्वर जी दृढ़ता के साथ स्पष्ट कहते हैं कि हमें किसी भी ईश्वर की आवश्यकता नहीं हैं और न ही उसके शरण की।

"रोकूँगा पहाड़ गिरता
शरण नहीं माँगूँगा
नहीं-नहीं प्रभु तुमसे
शक्ति नहीं माँगूँगा।"[9] (प्रार्थना १)

इसके विपरीत आज सर्वत्र ही अपनी समस्याओं से भागने और ईश्वर की शरण की तलाश ही मूल उद्देश्य रह गया है। कुकुरमुत्ते की भाँति यत्र-तत्र-सर्वत्र उग आये आश्रम इसके उदाहरण हैं, जहाँ आध्यात्म, मोक्ष और ईश्वर जैसे बेतुके और निरर्थक शब्दों के मायाजाल में फँसकर तथाकथित बाबाओं द्व ारा मतिभ्रम करने की प्रक्रिया अनवरत जारी है । अपनी सक्षमता और समर्थता के प्रति घोर अविश्वास ही इसका मूल कारण है। लेकिन इफ्फत असगर के शब्दों में कहें तो।" कवि अपने साहस को जीवित रखना चाहता है और अपनी असफलताओं, सीमाओं के साथ भरकर, बिखरकर अपनी आतंरिक शक्ति अर्जित करना चाहता है।"[10] इस तथ्य से जितना ज्यादा हो सके खुद को दूर रखने का मोह हम छोड़ नहीं पाते हैं और अंतत: वैज्ञानिक दृष्टि पर ही व्यंग्य करते हैं।

स्पष्ट है कि कवि की वैचारिक दृष्टि ही क्रांतिकारी और विद्रोही है। उनका विद्रोही चरित्र ही उनके समस्त कविताओं का केंद्र है। उनके लिए न तो पुरातनता महत्पूर्ण है और न ही नूतनता के नाम पर जड़ता। वे मूलत: साहस और विश्वास से लबरेज होकर समस्त जड़बद्धताओं का माखौल उड़ाते हैं। वे केवल व्यंग्य और आलोचना के लिए उपक्रम नहीं रचते, बल्कि अपने आदर्शों में भी गंभीर हैं, अन्यथा 'प्रार्थना' जैसी कविता का सृजन ही असंभव था। आज सम्पूर्ण विश्व कोरोना ग्रस्त है। ठप्प पड़ती जीवन की धारा में निराशा और आशा आँख-मिचौली खेल रही है। इस आशा-निराशा के आधार आस्था-अनास्था, आस्तिकता-नास्तिकता, और आडंबर-विज्ञान से पिरोए हुए हैं। विज्ञान अपनी पूरी बौद्धिकता के साथ तर्क और प्रमाण के आधार पर कोरोना महामारी से जंग लड़ रही है, वहीं कदम-कदम पर कोरोना और मानव सामर्थ्य के शह और मात सेपरे ईश्वरीय आस्था के बिगुल बजाते लोग खड़े हैं। वे ईश्वरीय चमत्कार के लिए प्रतीक्षित हैं। ईश्वरीय भक्ति की डफली बजाते लोगों की मानसिकता में कोरोना संक्रमण के फैलते प्रकोप को ईश्वरीय आशीर्वाद से ही नष्ट किया जा सकता है। ऐसे में सर्वेश्वर जी की 'प्रार्थना' कविता-संग्रह जड़ आस्थावादी मनोवृति के मकड़जाल से मुक्ति का राग बिखेरती है। यह नास्तिकता नहीं सामर्थ्य और आत्मविश्वास के पहचान की कविता है। वर्तमान समाज अति अंध-भक्ति, चापलूसी, भ्रष्टाचार और धार्मिकता के फंदे में कैद है। मंदिर-मस्जिद जैसे पावन स्थलों में धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक उन्मादों का जहर उगला जा रहा है। सामान्य जन-गण-मन अपने हालात परिवर्तन के लिए ईट-पत्थरों से बने दरों-दीवारों पर मत्था टेकने को बाध्य हैं, सबके पीछे सिर्फ एक वजह है।' ईश्वर के काल्पनिक अस्तित्व की परिकल्पना!'इतना अवश्य है कि अति बौद्धिकता के इस युग में धर्म-आस्था, ईश्वर-अल्लाह और मंदिर-मस्जिद आदि, मनुष्य की तार्किक, नैतिक एवं बौद्धिक विवेक को कसने का हथियार मात्र बन गया है, जहाँ लोग अपनी प्रज्ञा, क्षमता को तिरोहित कर संवेगात्मक धारा में बहना अपना परम कर्तव्य स्वीकार करते हैं। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने इस आधार की आवश्यकता से इन्कार करके ईश्वरीय स्वरूप को महत्वहीन कर दिया है। अत: इस कोरोना काल में ईश्वर, प्रार्थना और आस्था की जड़ता से मुक्ति के रूप में इस कविता को याद किया जाना ज्यादा समीचीन होगा।

संदर्भ सूची :

1. के. एस. चलम, आर्थिक सुधार और सामाजिक अपवर्जन भारत में उपेक्षित समूहों पर उदारीकरण का प्रभाव, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण। 2017, पृ.172.
2. काबरा, कमल नयन, भूमंडलीकरण के भँवर में भारत, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण-2008, पृ194.
3. https://www.gaonconnection.com/desh/nearly-52-percent-of-farmers-have-debt-in-india-loan-waiver-2019-lok-sabha-polls-42994](retrivedon -23/08/2020)
4. अग्रवाल, रामगोपाल, भारत 2050 : स्थायी समृद्धि की योजना, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण ख्र 2017, पृ. 80.
5. सिंह, जे. पी., आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन: 21वीं सदी में भारत, पी.एच.आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, संस्करण। 2019, पृ. 435.
6. https://www.bbc.com/hindiinternational52243699(retrived on 02/07/2020)
7. https://www.jagran.com/editorial/apnibaat-covid-19-will-changethe-face-of-world-jagran-special-20220856-html(retrived on -20/07/2020)
8. https://www.aninews.in/news/business/fiinovation-impacts-million-lives-amid-coronavirus-pandemic20200611180731(retrived on-(20/08/2020)
9. त्रिपाठी, मंजु, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और उनका काव्य-संसार, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2001, पृ. 59.
10. शर्मा, विजय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का काव्य, सौरभ प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2007, पृ. 45.
11. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल, कविताएँ ख्र दो, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1978, पृ. 133.
12. पाण्डेय, कपिल देव, सर्वेश्वर की कविता, प्रिय साहित्य सदन, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ. 190-191.
13. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल, कविताएँ ख्र दो, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1978, पृ. 130.
14. वही, पृ. 133.
15. पाण्डेय, कपिल देव, सर्वेश्वर की कविता, प्रिय साहित्य सदन, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ. 47.
16. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल, कविताएँ ख्र दो, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1978, पृ. 131.
17. वही, पृ. 130.
18. असगर, इफ्फत, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के काव्य में सामाजिक चेतना, नेहा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2004, पृ. 97.

◆◆◆